# धर्म ईसा की दृष्टि में

**डॉ. एम.डी. थामस**

---

जिस घटना को आधार मानकर आज इतिहास के दो हजार वषं गिनाये जा रहे हैं उस काल-गणना को चरितार्थ करने वाली एक विशेष घड़ी महज पल भर के इन्तजार की कतार मं है। अथात् 25 दिसम्बर, 2000 महापुरुष इसा मसीह की महाजयन्ती है, जो की एक तीसरी सहस्राब्दी की यात्रा की दहलीज पर है। जन्म की तारीख व वर्ष विवाद का विषय हो सकते हैं, लेकिन घटना की सत्यता का दुनिया स्वयं गवाह है।

ईसा का मसीही व्यक्ति जन्म से मत्यु तक, कुछ निराला ही था। बताया जाता है कि उनके नाम एम्मानुएल का अथं है — 'ईश्वर हमारे साथ हैं।' उनके श्रोताओं का साक्ष्य था, वे अन्य शास्त्रियों की तरह नहीं, अधिकार के साथ शिक्षा देते थे। उन्होंने परमेश्वर के 'पिता-भाव' की रहस्य-साधना की और, उससे 'पुत्र-भाव' की गहन और विशिष्ट चेतना हासिल की। उन्होंने अपनी सलीबो किस्मत मं 'समर्पण' रूपो मौत से गुजरते हुए 'धर्म' की नयी ऊजा की अनुभूति हासिल की। साथ ही, उन्होंन समूची मानव जाति व प्रकृति के साथ 'समन्वय' के भाव पर 'धर्म' के शाश्वत मूल्यों को लागू किया। इसा स्वयं धर्म की एक मौलिक परिभाषा हैं, एसा कहने मं कोइ अतिश्योक्ति प्रतीत नहीं होती है।

## धर्म का मूल अर्थ

धर्म का मूल अर्थ है — धारण करना, सहारा देना, बढ़ावा देना, जोड़ना, ग्रहण करना, संगठित करना, बनाये रखना, आदि। धर्म किसी भी पदाथं या व्यक्ति मं मूल रूप से रहने वाला प्राकतिक गुण है, जो उसमं बराबर स्थायी रूप से वतमान रहता है, जिसे उससे कभी अलग नहीं किया जा सकता है और जिससे उसकी पहचान होती है। जैसे आग मं ऊष्णता और पानी मं तरलता है, ठीक वैसे ही इन्सान मं इन्सानियत का गुण अपना मूल धर्म है। समाज के अस्तित्व तथा सुचारू संचालन के लिए सामान्य तथा विशिष्ट दोनों स्थितियों मं, सामुदायिक मूल्यों से युक्त आचरण मानव मात्र का धर्म है। अध्यात्म की दृष्टि से प्ररित आस्था, विश्वास, श्रद्धा और निष्ठा जो कि दर्शन तथा आचार की पद्धतियों के रूप मं अलग-अलग रूपों मं प्रचलित है, धर्म का संगठित स्वरूप है। महापुरुषों के पद-चिन्हों पर चलते हुए सन्त-भाव की साधना करना ही धर्म है। अध्यात्म-ग्रंथों मं उल्लेखित तथा ऋषि-द्रष्टाओं के अनुभव-ज्ञान से सराबोर महान आदर्शों पर अमल करना शाश्वत सुख के उद्देश्य से इन्सान का पारलौकिक धर्म है। धर्म आदर्श से अधिक व्यवहार है। वह जीवन की दृष्टि और शैली दोनों है। धर्म सदाचार है, कत्तव्य है, और अंत:करण की आवाज़ है। धर्म, मानवोचित जीवन का गुरुमंत्र है। धर्म ही ज़िन्दगी को दिशा देता है, वही उसकी चेतना है, उसी मं उसकी साथकता है, चरम लक्ष्य भी।

### धर्म समर्पण है

समर्पण देने, रखने या सौंपने की क्रिया है। यह नम्रता, श्रद्धा व भक्ति भाव से भेंट करने से होता है। इसमं अपना अधिकार, स्वामित्व, भार आदि किसी दूसरे के हाथों मं सदा के लिए दिया जाता है, याने अपने को किसी मजबूत स्थान पर स्थापित करना।

स्वीकार करना या अंगीकार करना समर्पण की शुरुआत है सम्यक या सम्पूर्ण अर्पण इसकी परिपूर्ति है। इस रूप में समर्पण सर्वोत्तम आचार है।

समर्पण झुकने की कला है। झुकने के लिए अहम को पूरी तरह से खाली करना जरूरी है। आत्मत्याग में कुछ भी अपने लिए सुरक्षित नहीं रखा जाता है। इसके लिए विनम्रता की आवश्यकता है। समर्पण निष्काम है, इसमें कोई शर्त नहीं है, अपना मोह किये बिना खोना पड़ता है। सूखे पत्ते की तरह घबराने वाला व्यक्ति जीवन को पकड रहता है। समर्पण में निडर होकर छोड़ने की प्रक्रिया है। समर्पण पतझड़ है। पतझड़ में सभी पत्ते झड़ जाते हैं, मानो सुख गया हो। लेकिन यह सब कुछ का अन्त नहीं है। नये पत्ते फिर उगेंगे, उठेंगे, खिलेंगे, फिर वसंत आयेगा, बहार आयेगी। समर्पण मौत है, लेकिन मौत जीवन का आखिरी पल नहीं है। मौत पार करने की प्रक्रिया है, जीने का नाम है, यह जीवन की व्याख्या है। समर्पण एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक पहुँचने का तरीका है। इसमें अमर होने की आकांक्षा बनी रहती है। अगर मरने को राजी हो जाये तो शाश्वत की खोज शुरु हो जायेगी। समर्पण परिवर्तन है, अतिक्रमण है, रूपान्तरण है। इसमें जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। इसमें नई ऊर्जा है, नया जीवन है, जीवन की रफ्तार है, मुक्ति है, अमरता है। समर्पण झरने से सागर तक की जीवन-यात्रा है। इसमें परमात्मा की गरिमा झलकती है। समर्पण में धर्म-बोध और शाश्वत के ज्ञान की चरम सीमा विद्यमान रहती है।

ईसा का सम्पूर्ण जीवन, जन्म से मृत्यु तक, समर्पण का एक अटूट धागा था। उनके जन्म की कहानी 'ईश्वर के लिए भी असम्भव नहीं है' (लूकस 1.37) - इस सन्देश से शुरु हुआ। जवाब स्वरूप उनकी माता मरियम से 'देखिए मैं प्रभु की दासी हूँ। आपका कथन मुझमें पूरा हो जाये' (लूकस 1.38) — इन शब्दों में समर्पण का मार्ग प्रशस्त किया। अपनी मसीही दीक्षा तथा रूपान्तरण के अवसरों पर, ईसा ने अपने स्वर्गिक पिता से 'यह मेरा प्रिय पुत्र है। मैं इस पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ।' (इसकी सुनों) (मत्ती 3.17,17.5) - ऐसी वाणी सुनकर उन्होंने अपने जीवन मिशन के लिए इश्वरीय स्वीकृति हासिल की। इस घटना से उन्होंने अपने भीतर पिता-भाव को जागृत किया ही नहीं, पुत्र-भाव के सहज समर्पण का अनुभव भी किया। वे कहा करते थे — जिसने पुत्र को देखा, उसने पिता को भी देखा (योहन 14.2) जो कुछ पिता करता है, वह पुत्र भी करता है (योहन 51.2), क्या आप नहीं जानते थे कि मैं निश्चय ही अपने पिता के घर पर होऊंगा (लूकस 2.41)। 'मेरे पिता ने मुझे सब कुछ सौंपा है। पिता को छोड़कर यह कोई भी नहीं जानता कि पुत्र कौन है और पुत्र को छोड़कर यह कोई नहीं जानता कि पिता कौन हैं। केवल वही जानता है, जिस पर पुत्र उसे प्रकट करने की कृपा करता है' (लूकस 10.22), 'जो मेरे स्वर्गिक पिता की इच्छा पूरी करता है, वही स्वर्ग राज्य में प्रवेश करेगा' (मत्ती 7.21) 'मैं सच्ची दाखलता हूँ और मेरा पिता बागवान है' (योहन 15.1), पिता मुझसे महान हैं (योहन 14.28), मैं पिता में हूँ और पिता मुझमें हैं (योहन 14.10), जो कार्य तूने (पिता ने) मुझे करने को दिया है, वह मैंने पूरा किया है (योहन 17.4), जो कुछ मेरा है सो तेरा (पिता का) है, और जो तेरा है (पिता का), वह मेरा है (योहन 17.10) परम पावन पिता! तूने जिन्हें मुझे सौंपा है, उन्हें सुरक्षित रख, जिससे वे हमारी ही तरह एक बने रहें (योहन 14.11), मैं उनके लिए अपने को समर्पित करता हूँ। जिससे वे भी सत्य की सेवा में समर्पित हो जायें (योहन 14.11), पिता! तेरे लिए सब कुछ सम्भव है। यह प्याला मुझसे हटा ले। फिर भी मेरी नहीं, बल्कि तेरी ही इच्छा पूरी हो (मारकुस 14.36), पिता! मैं अपनी आत्मा को तेरे हाथों सौंपता हूँ (लूकस 23.46)। ये सभी बातें परमपिता परमश्वर से इसा के पुत्रवत तादात्म्य को साफ--साफ शब्दों में व्यक्त करती हैं। उसने परमश्वर के भीतरी रहस्य की साधना की और इश्वरीय तत्व को पिता-भाव में समाहित कर उद्घाटित किया। इन सभी बातों में पिता परमश्वर के प्रति पुत्र-भाव से सराबोर उनका समर्पण वास्तव में विशिष्ट बना है। ईसा स्वर्गिक पिता के प्रति प्रतिबद्ध होकर भक्तिमय समर्पण की समस्त स्तरों पर पहलुओं पर पूरी तरह से खरे उतरे हैं और समर्पित मानसिकता में धर्म-भाव की ऊँचाइयों को प्रमाणित किया।

साथ ही, ईसा ने मन्दिर के खजाने मं सिक्के डालने वालों मं धनियों कि तुलना मं एक कंगाल विधवा को बहुत सराहा, वयोंकि सबने अपनी समद्धि से कुछ डाला, परन्तु इसने तंगी मं रहते हुए भी जीविका के लिए अपने पास जो कुछ था वह सब दे डाला (मारकुस 12.41.45)। एक शास्त्री के सवाल के जवाब के रूप मं उन्होंने संहिता की सबसे बड़ी आज्ञा के तहत कहा, 'अपने प्रभु ईश्वर को अपने सारे हृदय, अपनी सारी आत्मा, अपनी सारी शक्ति और अपनी सारी बुद्धि से प्यार करो' (लूकस 10.27)। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, जो मरा अनुसरण करना चाहता है, वह आत्मत्याग करे और अपना वरूस उठाकर मरे पोछे हो ले, वयोंकि जो अपना जीवन सुरक्षित रखना चाहता है, वह उसे खो देगा और जो मरे कारण अपना जीवन खो देता है, वह उसे सुरक्षित रखेगा (मत्ती 16.24.25)। इन वावयों से इसा ने समर्पण मं विद्यमान आत्मत्याग की गुणात्मकता व सम्पूर्णता को धार्मिकता की बुनियादी कसौटी के रूप मं रेखांकित किया।

**धर्म समन्वय है**

निषेधात्मक शब्दावली मं, समन्वय दो वस्तुओं, व्यक्तियों या तत्वों मं विरोध न होने की अवस्था या भाव है। स्वीकारात्मक तौर पर, यह उनमं होने वाली अनुरूपता या आपसी सम्बन्ध है। कार्य और कारण का निवाह, प्रवाह या सम्बन्ध भो समन्वय है। एक-दूसरे को धारण करना, सहारा देना या सम्मिलत रूप से धारण करना इसका स्वभाव है। समन्वय एक-दूसरे से समान रूप से मिलन है, इस प्रकार मिलना कि एक इकाइ बन जाय, यानो, एक-दूसरे मं विलय होना। यह सम्बन्धों का ताना-बाना है, यह आपस मं जुड़ी हुई, लगी हुई, मिली हुइ स्थिति मं रहना है। इसमं भेद-भाव का अभाव है। स्वीकारात्मक मानसिकता इसके प्राण हैं। अखण्ड का भाव इसका धर्म है। संगति, ताल-मल, मल-जोल, सामंजस्य आदि इसके पयाय हैं। आपसी सद्भाव, समभाव, सम्मान, संवाद और सहयोग इसकी अनिवार्य प्रक्रिया है। एकता और भाइचारा इसकी उपलब्धियाँ हैं। एक-दूसरे के बोच किसी भी प्रकार का भेद-भाव न रखना, एक-दूसरे के साथ उपस्थित होना, एक-दूसरे को समझाना-स्वीकारना, एक-दूसरे से प्रम करना, एक-दूसरे की सेवा-भलाई करना, एक-दूसरे को बढ़ाना, एक-दूसरे की उपलब्धयों पर खुशी मनाना, आदि समन्वय-भावना के विभिन्न आयाम हैं।

विचार और भाव, शरीर, और आत्मा, करनी और कथनी, आत्मा और परमात्मा, गुण और परिणाम, भीतरी जगत और बाहरी जगत, प्रकृति और मनुष्य, विज्ञान और अध्याय आदि मं सन्तुलन बनाये रखना समन्वय का ढांचा है। 'मं-मं' और 'तू-तू' से आगे बढ़कर 'हम' बनना, सामुदायिक भावना को धारण करना, परमात्मा की विद्यमानता को सम्मिलित रूप से मानते-बांटते रहना और उस रूप मं मानवीय जीवन को चरितार्थ करना समन्वय के चरम लक्ष्य हैं। लोकमंगल या समाज-कल्याण की भावना समन्वय का प्रमाण है। आत्मीयता और अंतरंगता के साथ-साथ न्याय और पारदशिता से भरे-पूरे आध्यात्मिक समाज की रचना समन्वय का ध्येय है। मानवीय और आध्यात्मिक मूल्यों पर राज इसका सम्बल है। भारतीय संस्कृति को शब्दावली मं 'विविधता मं एकता' तथा 'वसुधैवकुटुम्बकम' समन्वय भावना के गुरु-मंत्र हैं। इस ढंग से होना या अस्तित्व रखना समन्वय का धर्म है।

ईसा द्वारा निरूपित धर्म की दृष्टि समन्वय-भाव से पूरी तरह से ओत-प्रोत थी। यहूदी समाज मं स्त्री और पुरुष के बोच बड़ी असमानता रहती थी। एक बार यहूदी धर्म के नेता शास्त्रियों तथा फरीसियों ने एक व्यभिचारिणी को इसा के सामने पश किया। उनके अनुसार वह पत्थरों से मार डाले जाने की हकदार थी। इसा को उनका अन्यायपूर्ण रवैया मंजूर नहीं था, वयोंकि व्यभिचार के मामले मं पुरुष महिला से ज्यादा जिम्मदार होता है या कम से कम समान रूप से। इसलिए दोनों को दण्ड मिलना चाहिए, वही न्याय है। इस लिहाज से उन्होंने कहा, 'तुम मं जो निष्पाप हो, वह इसे सबसे पहले पत्थर मारे' (योहन 8.1.11)। इस प्रकार इसा ने तत्कालीन समाज मं नारी को नर की गुलामो से बचाते हुए नर और नारी के बोच न्याय और बराबरी के भाव को पुनर्स्थापित करने का क्रान्तिकारी कदम उठाया।

करनी और कथनी के समन्वय के विषय में इसा की बात ध्यातव्य है। प्रभु! प्रभु कहने से न कोइ धर्मी बनता, न स्वर्ग राज्य में प्रवेश करता, बल्कि जो मेरे स्वर्गिक पिता कि इच्छा पूरी करता है वही स्वर्ग राज्य में प्रवेश करेगा (मत्ती 7.21)। जो आदशों पर अमल नहीं करता, वह बालू पर अपना घर बनाने वाले के समान मूर्ख है (7.24-27)। इसकी व्याख्या के रूप में याकूब कहते हैं, 'वचन के श्रोता ही नहीं, बल्कि पालनकर्ता भी बनें।' जो व्यक्ति वचन सुनता है, किन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करता, वह उस मनुष्य के सदृश्य है, जो दर्पण में अपना चेहरा देखता है। वह अपने को देखकर चला जाता है और उसे याद नहीं रहता कि उसका अपना स्वरूप कैसा ह' (याकूब 1.22-23)। 'जिस तरह आत्मा के बिना शरीर निर्जीव है उसी तरह कर्मों के अभाव में विश्वास निर्जीव है' (याकूब 2.26)।

भीतरी जगत और बाहरी जगत में मेल-जोल के सम्बन्ध में इसा नें पाखण्डी धार्मिक नेताओं पर बहुत ही तीखी टिप्पणी की है। 'ये लोग मुख से मेरा आदर करते हैं, परन्तु इनका हृदय मुझसे दूर है। ये व्यर्थ ही मेरी पूजा करते हैं और ये जो शिक्षा देते हैं, वह है मनुष्य के बनाये हुए नियम मात्र' (मत्ती 15.8.1)। 'वे कहते तो हैं, पर करते नहीं। वे बहुत से भारी बोझ बांधकर लोगों के कंधों पर लाद देते हैं, परन्तु स्वयं उंगली से भी उन्हें उठाना नहीं चाहते। वे हर काम लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए करते हैं' (मत्ती 2.3,4.5)। 'तुम मनुष्यों के लिए स्वर्ग का राज्य बंद कर देते हो, तुम स्वंय प्रवेश नहीं करते और जो प्रवेश करना चाहते हैं, उन्हें रोक देते हो' (मत्ती 23.14)। 'तुम पुदीने, सौंफ और जीरे का दशमांश तो देते हो, किन्तु न्याय, दया और ईमानदारी आदि संहिता की मुख्य बातों की उपेक्षा करते हो' (मत्ती 23.23)। 'तुम मच्छर छानते हो, किन्तु ऊँट निगल जाते हो' (मत्ती 23.24)। 'तुम प्याला और थाली को बाहर से मांजते हो, किन्तु भीतर से वे लूट और असंयम से भरे हुए हैं' (मत्ती 23.25)। 'तुम पुती हुई कब्रों के सदृश्य हो, जो बाहर से सुन्दर दिख पड़ती है, किन्तु भीतर से मुरदों की हड्डियों और इस तरह की गन्दगी से भरी हुई हैं'। 'इसी तरह तुम भी बाहर से लोगों को धार्मिक दिख पड़ते हो, किन्तु भीतर से तुम पाखण्ड और अधर्म से भरे हुए हो' (मत्ती 23.27.28)। 'वे (धर्म-नेता)' दिखावे के लिए, लम्बी-लम्बी प्राथनाएं करते हैं' (लूकस 20.47)। 'तुम लोग मनुष्यों के सामने तो धर्मी होने का ढोंग रचते हो, परन्तु ईश्वर तुम्हारे हृदय जानता है' (लूकस 16.15)। 'तुम लोग मनुष्य की चलाई हुई परम्परा बनाये रखने के लिए ईश्वर की आज्ञा रद्द करते हो' (मारकूस 7.8)। इसा ने अपने शिष्यों को चेतावनी देते हुए कहा, 'यदि तुम्हारी धार्मिकता शास्त्रियों और फरीसियों की धार्मिकता से गहरी नहीं हुई, तो तुम स्वर्ग राज्य में प्रवेश नहीं करोगे' (मत्ती 5.20)। अपेक्षात्मक शब्दावली में तत्कालीन धार्मिक नेताओं की अधार्मिकता की कलई खोलती हुई इसा द्वारा कही गयी ये तीखे मसाले युक्त, कसैली और कटु बातें सभी धर्मों के सभी समय के अधिकांश धर्म नेताओं पर सहजता से खरी उतरती हैं। एसी कड़वी आलोचना का उद्देश्य जीवन के विभिन्न पहलुओं के बीच फैले हुए असामंजस्य के कारण धर्म की निरर्थकता को उजागर करना था।

ईश्वर-प्रेम और मनुष्य-प्रेम के बीच समन्वय इसा के इन विचारों में दर्शाया जा सकता है। यहूदी शास्त्री के सवाल की 'संहिता में सबसे बड़ी आज्ञा कौन-सी है?' के जवाब के रूप में इसा नें कहा, 'अपने प्रभु-ईश्वर को अपने सारे हृदय, अपनी सारी आत्मा और अपनी सारी बुद्धि से प्यार करो। साथ ही, अपने पड़ोसी को अपने समान प्यार करो' (मत्ती 22.36-31)। कयामत का एक दृश्य पेश करते हुए इसा ने कहा — 'मैं भूखा था और तुमने मुझे खिलाया, मैं प्यासा था और तुमने मुझे पिलाया, मैं नंगा था और तुमने मुझे पहनाया, मैं बीमार था और तुम मुझसे भेंट करने आये, मैं बंदी था और तुम मुझसे मिलने आये।'' तुमने मेरे इन भाइयों में से किसी एक के लिए, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, जो कुछ किया, वह तुमने मेरे लिए ही किया, (मत्ती 25.25-36,40)। इन शब्दों से इसा ने इस तथ्य को पेश किया कि साथी इन्सानों के प्रति जो किया जाता है या नहीं किया जाता है वह ईश्वर के प्रति किया जाता है या नहीं किया जाता है। अर्थात मनुष्य-सेवा ईश्वर-पूजा की कसौटी है। साथ ही, 'जब तुम वेदी पर अपनी भेंट चढ़ा रहे हो और तुम्हें वहाँ याद आये कि मेरे भाई को मुझसे कोई शिकायत है, तो अपनी भेंट वहीं वेदी के सामने छोड़कर पहले अपने भाई से मेल करने जाओ और तब आकर अपनी भेंट चढ़ाओ' (मत्ती 5.23-24)। 'मैं बलिदान नहीं, बल्कि दया चाहता हूँ' (मत्ती

12.7)। इन शब्दों से इसा का तात्पय है — ईश्वर और मनुष्यों के प्रति सम्बन्धों म पण तालमल का होना साथक जीवन की बनियादी जरूरत है। उसी म धर्म भी निहित है।

अपने और दूसरों के बोच समन्वय के लिए इसा का स्वर्णिम नियम है — 'दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो तुम भी उनके प्रति वैसा ही किया करो' (मत्ती 31.2)। 'धर्म के तथाकथित शास्त्रियों ने इन्सान को पापो और पण्यातमा, धमों और अधमों, भले अैर बरे इस आधार पर बांट रखा है' (मत्ती 5.45)। इसा पापियों कि श्रेणी म गिनाये जाने वाले नाकेदार जकेयुस से मिलने, उसके साथ भोजन करने तथा उसके यहाँ ठहरने के लिए, उसके घर गये (लूकस 11.1-10)। इस प्रकार उन्होंने पापियों, नाकेदारों, नीची जातियों, दबाये हुओं, दलितों, गरीबों तथा दीन-हीनों के साथ उठते-बठते, साथ खाते-पोते (लूकस 5.30) और दोस्ती करते हुए धर्म की आड़ म पल रहे अधार्मिक, निराधार, कृत्रिम तथा निष्ठुर भेद-भाव को मिटाकर मानवोचित समभाव और आपसी स्वीकृति को पनस्थापित करने की क्रांति मचायी। साथ ही, उन्होंने यह अमिट रूप से सिद्ध किया कि 'नीरोगी को नहीं, रोगियों को वैद्य की जरूरत होती है। म धर्मियों को नहीं, पापियों को पश्चाताप वे लिए बलाने वाला हूँ' (लूकस 5.31-32)। तन कर खड़ा होकर बड़े-बड़े शब्दों म प्राथना करने वाले एक फरीसी और दीन-भाव से ईश्वर से दया-याचना कर रह एक नाकेदार की प्राथना की तुलना करते हुए इसा ने फरीसी को घमण्ड के कारण नकली और नावे दार को पाप-मक्ति के लायक होने से असली करार दिया (लूकस 18.1-14)। इस प्रकार इसा ने समाज म दलितों, अंत्यजों तथा दबाये हुओं के प्रति तरजीही प्रम दिखाकर ईश्वरीय हृदय की महानता की ओर रोशनी फेरी और सम-भाव को मानवोचित गुणों की बनियाद व रूप म स्थापित करने का डटकर आन्दोलन चलाया।

समन्वय अभियान के अन्तगत उसकी चरम सीमा के रूप म इसा ने एक अनसुनी या असाधारण बात को परम आवश्यक साबित किया। वह है शत्रुओं से प्रम का। इसा पछते हैं 'यदि तुम उन्हीं से प्रम करते हो, जो तुम से प्रम करते हैं तो परस्कार का दावा कैसे कर सकते हो?' यदि तुम अपने भाइयों को ही नमस्कार करते हो, तो वया बड़ा काम करते हो? शत्रुओं से प्रम करने से तुम अपने स्वगिक पिता की सन्तान बन जाओगे, वयोंकि वह भले और बरे, दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धमों और अधमों, दोनों पर पानी बरसाता है। इसलिए तुम पण बनो, जैसे तुम्हारा स्वगिक पिता पण है (मत्ती 5.43-48)। एसी उदारतापण सम-भाव ही असल म प्रम है और पणता की यही पहचान है। परम पिता इश्वर का सबसे बड़ा गुण यही है। इसा ने यह भी कहा 'कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो'। 'जो मकदमा लड़कर तुम्हारा कुरता लेना चाहता है उसे अपनी चार भी ले लेने दो' यदि कोइ तुम्हें आधा कोस बगार म ले जाये, तो उसके साथ कोस भर चले जाओ (मत्तो 5.32-42)। धन्य हैं वे जो दयालु हैं। उन पर दया की जाएगी। धन्य हैं वे जो मल कराते हैं। वे ईश्वर के पत्र कहलायेंगे (मत्ती 6.24)। दोष न लगाओ जिससे तुम पर भी दोष न लगाया जाये। 'जिस नाप से तुम नापते हो, उसी से तुम्हारे लिए नापा जायेगा'। जब तुम्हें अपनी ही आँख की धरन का पता नहीं, तो तुम अपने भाइ की आँख का तिनका वयों देखते हो? (मत्ती 7.1-2)। इन वावयों से इसा ने मानवीय परिष्कार, उदारता तथा बिना शत प्रम से परिपण व्यवहार की बारीकियों को मानवीय जीवन का सही आधार ठहराया।

ईसा ने यह भी कहा था 'इससे बड़ा प्रम किसी का नहीं कि कोइ अपने मित्रों के लिए अपने प्राण अर्पित कर दें' (योहन 15.13)। भला गड़रिया म हूँ। भला गडरिया अपनी भड़ों के लिए अपने प्राण दे देता है (योहन 10.11) माग, सत्य और जीवन म हूँ (योहन 14.6,11.25), पनरुत्थान और जीवन म हूँ (योहन 11.25) आदि के आत्मकथनों पर अमल करते हुए गुरु होकर भी अपने शिष्यों के पर धोये और सलीब पर अपने प्राण सारी मानव जाति के लिए मोक्ष का माग प्रशस्त करते हुए अर्पित किया। इसा के धर्म-भाव की चरम परिणति थी — अपने शिक्षा को आचार म उतारते हुए सलीबो समर्पण म मानवता के समग समन्वय को करके दिखाना और उसे युग-युगों के लिए स्थापित करना, जो कि अनूठा बन पड़ा ह।

**निष्कर्ष**

महापुरुष अपने पुरुषार्थ की खूबियों के कारण हमेशा याद किये जाते हैं। वे अपनी गुरुता व कारण गुरु और आचरण पर अमल करने के कारण आचार्य माने जाते हैं। महात्मा ईसा पर यह बात पूरी तरह से खरी उतरती है धर्म वह है जो इन्सान को हर पल शाश्वत स्वतंत्रता की ओर अगसर करता हो। ईसा की दृष्टि में इस धर्म के दो पहलू हैं। 'समर्पण और समन्वय'। समर्पण के रूप में उनका धर्म है — भक्तिमय रहस्य साधना के माध्यम से अपने आप को पूरी तरह से मिटाकर परमपिता परमेश्वर के हाथों अपने को बहुजन हिताय सौंपना। समन्वय के रूप में उनका धर्म है — उसी समन्वय के भाव को सामाजिक संदर्भ में एक-दूसरे पर बिना शर्त प्रेम के रूप में लागू कर एक आध्यात्मिक समाज की रचना करना।

समर्पण सिद्धान्त है और समन्वय व्यवहार। समर्पण दृष्टि है, समन्वय शैली। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में आपस में संबंधित हैं, पूरक भी हैं। समर्पण और समन्वय की सन्तुलित और संयोगपूर्ण साधना में ईसा के मानव धर्म की परिभाषा के साथ-साथ उसकी सटीक और विस्तृत व्याख्या पायी जाती है यह शाश्वत स्वतंत्रता की एक तीर्थयात्रा है। धर्म-ईसा की दृष्टि और शैली में एक समग्र, सम्पूर्ण और परिष्कृत अनुभूति और चेतना ही नहीं, प्रेरणा और शक्ति से परिपूर्ण एक विशिष्ट जीवन मार्ग सिद्ध हुआ है।

---

**डॉ. एम. डी. थॉमस**
**संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली**
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS